ISSN: 3048-9423(Online)
Naveen International Journal of Multidisciplinary Sciences (NIJMS)
© NIJMS | Vol. 1 | Issue 4 | Feb-Mar 2025
Available online at: https://nijms.com/

प्राचीन भारत में इतिहास लेखन की अवधारणा

श्रीमती दीप्ति राणा

असिस्टेंट प्रोफेसर,इतिहास,अ०प्र०ब०रा०स्ना० महाविद्यालय अगस्त्यमुनि (रुद्रप्रयाग)

corresponding author Emai: deeptirana.advo@gmail.com

शोध सारांश

प्राचीन भारत में इतिहास लेखन की अवधारणा एक जटिल और बहुआयामी विषय है जिसे पश्चिमी इतिहास लेखन की परंपरा से भिन्न दृष्टिकोण से समझना आवश्यक है। प्रस्तुत अध्ययन में वैदिक काल से गुप्त काल तक के इतिहास लेखन की विभिन्न धाराओं का विश्लेषण किया गया है। भारतीय इतिहास लेखन में इतिवृत्त, पुराण, चरित, आख्यान, और राजतरंगिणी जैसी विधाओं का विकास हुआ। कालिदास, बाणभट्ट, कल्हण जैसे लेखकों ने ऐतिहासिक चेतना का परिचय दिया। भारतीय इतिहास बोध में धर्म, कर्म, और युगचक्र की अवधारणाएं केंद्रीय हैं। यह अध्ययन इस मिथक को खंडित करता है कि प्राचीन भारत में इतिहास बोध का अभाव था। वास्तव में, भारतीय इतिहास लेखन की अपनी विशिष्ट पद्धति और दर्शन था जो धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन से गहरे रूप से जुड़ा था।

मुख्य शब्द: *पर्यावरण संरक्षण, भारतीय दर्शन, पंचमहाभूत, वैदिक परंपरा, पारिस्थितिकी चेतना, अहिंसा।*

परिचय-

अतीत से लगाव मनुष्य की नैसर्गिक प्रवृत्ति है। प्राचीन भारत के लोगों में अतीत के प्रति एक जीवंत प्रेरणा थी। यद्यपि यह चेतना आधुनिक अर्थों में इतिहास बोध से कुछ अलग प्रतीत होती है। संभवत: जिसका कारण यह था कि वैदिक समाज भारत के प्रारंभिक समाजों में से एक था और यह समाज भारतीय समाज के आधारभूत स्तंभों जैसे मूल्यों और नैतिकता को भी गढ़ रहा था। ऐसी स्थिति में कहा जा सकता है कि प्राचीन भारत के मनीषियों ने इतिहास को धर्म के साथ अंतर्संबंधित करके प्रस्तुत किया। आधुनिक पश्चिमी इतिहासकारों का मानना है कि प्राचीन भारत के लोगों में इतिहास की समझ नहीं थी,लेकिन जब हम प्राचीन भारत के ज्ञान की गहराई में उतरते हैं तो हम देखते है कि प्राचीन भारत के लोगों के पास अपना विशाल वैदिक वाङ्मय था। प्रारंभ से ही भारतीय समाज में नैतिक व धार्मिक मूल्यों की प्रधानता रही है अतः इतिहास को प्राचीन भारतीय लोग केवल राजनीति के रूप में नहीं देख थे, इससे आगे बढ़कर वे इतिहास को धर्म ,मूल्य, नैतिकता व नियामक व्यवस्था के रूप में संयुक्त रूप से देखा। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य भारतीयों में इतिहास लेखन की अवधारणा के विविध पक्षों को उजागर करना है।

समय के साथ-साथ इतिहास के प्रति मानव की समझ में परिवर्तन आया है और यह परिवर्तन समाजों के अनुरूप भिन्न भिन्न होता रहा है।इतिहास बोध के प्रति समझ में हम वैश्विक स्तर पर भिन्नता देखते है।जब पाश्चात्य विद्वान ये कहते हैं कि भारतीयों को इतिहास की समझ नहीं थी तब वे भूल जाते हैं कि इतिहास की व्याख्या के संदर्भ में भारत में अलग मान्यता रही है। जब हम भारत में इतिहास लेखन का आधार देखते हैं तो हमें हड़प्पा सभ्यता के पुरातात्विक स्रोतों से लेकर प्रारंभिक मध्य काल तक अलग अलग रूपों में उपलब्ध साहित्यिक स्रोतों का गहराई से विश्लेषण करना चाहिए।

अतः केवल इतिहास की पाश्चात्य परिभाषाओं के संदर्भ में यह नहीं कहा जा सकता कि प्राचीन भारत के लोग इतिहास लेखन के प्रति उपेक्षा का भाव रखते थे। प्राचीन भारत के लोगों में अतीत के प्रति एक जीवंत चेतना थी। प्रारंभ में इतिहास की मौखिक परंपरा जैसे कि गाथा, नराशंसी के रूप में दिखता है जो ऋग्वैदिक काल में विद्यमान थी। उत्तर वैदिक काल और उसके बाद के ऐतिहासिक रचनाओं के आख्यान, इतिवृत्त, पुराण और इतिहास और जैसे रूपों का आविर्भाव हुआ। उत्तर वैदिक कल में राजकीय अधिकारियों का महत्वपूर्ण वर्ग सूत था, जिसका दायित्व देवताओं और राजाओं की वंशावलियां की रचना एवं संकलन करना था। ऋग्वेद के कवि अपनी काव्य परंपरा के प्रति सचेत थे, वे अपने सामाजिक इतिहास की परंपरा के प्रति भी उतने ही सचेत थे। भरत के पूर्व पुरुष सुदास के वीरतापूर्ण कार्यों का उल्लेख अनेक सूक्तों में है। इन्होंने परूषणी नदी को पार कर शत्रुओं को परास्त किया था। दाश राज्ञ और यमुना तट पर हुए सुदास और त्रित्सु भरतों के हुए युद्ध का वर्णन ऋग्वेद में मिलता है। लंबे समय से ऐसा माना जाता रहा है कि प्राचीन भारतीय जन समाज में इतिहास बोध का अभाव था ।इस मान्यता का कारण यह है कि ऐसा नहीं लगता कि उन्होंने अतीत की घटनाओं का सही विवरण रखा हो। इस संबंध में उनकी प्राचीन यूनानियों से तुलना की जाती है जिनके इतिहास को एक के बाद एक अनेक इतिहासकारों ने लेखबद्ध किया। इसी तरह से चीनियों से भी तुलना की जाती है जिन्होंने पारंपरिक रूप से विभिन्न राजवंशों और शासकों के इतिवृत्तों को सुरक्षित रखा है। यह माना जाता है की सातवीं सदी ईसवी के पूर्व भारतीय परंपरा में ऐसे साहित्य का अभाव है जिन्हें स्पष्ट रूप से ऐतिहासिक लेखन कहा जा सके। ऐतिहासिक विवरण विभिन्न प्रकार के ऐसे साहित्य में निहित है जो अपने आप में ऐतिहासिक दस्तावेज नहीं है। वास्तव में इतिहास लेखन की अवधारणा इतिहास बोध पर निर्भर करती है। अतीत की ऐसी घटनाओं के प्रति सजगता को इतिहास बोध कहा जा सकता है जो समाज विशेष के लिए प्रासंगिक होती हैं और जिन्हें एक कालानुक्रम में रखकर देखा जा सकता है और जिनकी अभिव्यक्तियां ऐसे रूप में होती है जो उसे समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके।

इतिहास बोध की इस तरह की परिभाषाएं वास्तव में आधुनिक चिंतन का परिणाम है,जिसे प्राचीन काल के इतिहास लेखन पर पूर्ण रूप से लागू नहीं किया जा सकता है क्योंकि वह भारत के प्रारंभिक समाज थे। प्रत्येक समाज की अपनी अतीत की एक कल्पना होती है इसीलिए किसी भी समाज को इतिहास निरपेक्ष नहीं कहा जा सकता। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक स्मृति को अकसर कालानुक्रम से लेखबद्ध किया जाता है। इसलिए किसी समाज की ऐतिहासिक परंपरा के अध्ययन का सबसे महत्वपूर्ण पहलू इस बात को समझना है कि क्यों कुछ घटनाओं को सबसे अधिक प्रासंगिक और लेख बद्ध करने योग्य माना गया। विवरण जिस रूप में रखा जाता है वह बहुत हद तक इस बात पर निर्भर करता है कि दर्ज की गई घटना किस प्रकार की है और भारतीय ऐतिहासिक परंपरा में सातवीं सदी ईस्वी से पूर्व की परंपरा का मुख्य उद्देश्य राजनीतिक घटनाओं का विवरण रखना नहीं था क्योंकि जिन लोगों पर ऐतिहासिक परंपरा को सुरक्षित रखने की जिम्मेदारी थी वह उन्हें हमेशा सबसे अधिक प्रासंगिक नहीं मानते थे।

संस्कृत साहित्य में 'इतिहास' शब्द का प्रयोग हुआ है जो अंग्रेजी के 'हिस्ट्री' शब्द का पर्यायवाची है। इतिहास का अर्थ है 'ऐसा ही हुआ है'। अर्थ विस्तार के कारण इतिहास के साथ आख्यानों और अतीत की घटनाओं के विवरण का समावेश हो गया। इतिहास का उद्देश्य अतीत की घटनाओं का वर्णन इस प्रकार करना था कि वह हिंदू परंपरा के लक्ष्य और प्रयोजनों के लिए प्रासंगिक बन जाए। ऐतिहासिक परंपरा का जन्म वैदिक काल में प्रचलित कई साहित्यिक विधाओं से हुआ है इनमें सबसे पहले महत्वपूर्ण गाथा, नरशांसी, आख्यान और पुराण थे। यह अकसर उन पुरोहित कवियों की रचनाएं हुआ करते थे जो कबीले से संबंधित थे। मूल परंपरा मौखिक थी और रचनाएं अकसर सभा और समागमों में सुनाई जाती थी। मूल परंपरा के लिखित प्रलेख काफी बाद में आए।

आदर्शवादी दृष्टिकोण

रामायण और महाभारत महाकाव्य में उस ऐतिहासिक परंपरा के तत्व शामिल है जो मुख्य रूप से पूर्व के तत्वों का समावेश करने की प्रयत्नों की उपज थी। यह प्रयत्न इसलिए किए गए कि कबीले और उनकी भौगोलिक स्थितियों का संबंध इन महाकाव्य के नायकों से दिखाया जा सके। इस सूचना को एकत्र करने और किसी साहित्यिक विधा में प्रस्तुत करने का काम मुख्यतया सूत्रों और मागधों का अर्थात् चारणों का था। सूत और मागध

मूलतः वैदिक काल के पुरोहित कवियों के परिवारों के सदस्य होते थे और उस काल में उन्हें महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। उनका काम देवताओं, राजाओं,ऋषियों, नायकों की वंशावलियों को सुरक्षित रखना और समय की मांग के अनुसार राजा की प्रशस्ति की रचना करना था।नई बस्तियों और कबायली लड़ाईयों के संदर्भ में राजाओं के वंशावलिया ऐतिहासिक परंपरा का मूल स्रोत बन गई क्योंकि वंशावलियों को अन्य प्रयोजन के साथ कानूनी अधिकारों और सामाजिक प्रतिष्ठा के व्यावहारिक उद्देश्य से सुरक्षित रखा जाता था और कबीले पहचान को बनाए रखना उसका प्रयोजन था।

धार्मिक और दार्शनिक आधार

पुराण का अर्थ है प्राचीन जनश्रुति। वी एस आप्टे के अनुसार जो इतिहास के रूप में विदित है वह कथाओं के रूप में व्यवस्थित अतीत की घटनाएं या प्राचीन जनश्रुतियां हैं जिनमें कर्तव्य या नैतिक विधान, सांसारिक कल्याण, आकांक्षा, प्रेम तथा अंतिम प्रयाण या ईश्वर के साथ मिलन का शिक्षाप्रद प्रयोग होता है। यद्यपि पुराणों में ब्रह्मांडीय और पराभौतिक विषयों का वर्णन है लेकिन पुराणों में दी गई वंशावलियां पुराणों के ऐतिहासिक पक्ष को निरूपित करती है। पार्जीटर के अनुसार यह संभव है कि जब धार्मिक ऋचाओं का वेदों में संकलन किया गया तो जो प्राचीन धर्मनिरपेक्ष जनश्रुतियां शेष बच गई उन्हें पुराणों के रूप में संकलित कर लिया गया। महाभारत युद्ध के बाद उत्तर भारत में शासन करने वाली राजवंशों के छंद बद्ध विवरणों ने भी धीरे-धीरे साहित्यिक माध्यम के रूप में प्राकृत को अपना लिया और चारण-दरबारी गायक इनका पाठ करने लगे । ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी में जब भारत में लिखने की कला का आरंभ हुआ तो उन विवरण को अवश्य ही लिपिबद्ध कर लिया गया होगा। इस बात के स्पष्ट संकेत मिले हैं कि संपूर्ण मत्स्य ,वायु, ब्रह्मांड पुराण तथा विष्णु और भागवत पुराण के कई अंश की रचना मूलतः प्रकृति में हुई थी। भविष्य पुराण कलयुग के राजवंशों की सूची प्रदान करने वाला पहला पुराण था और मत्स्य, वायु, ब्रह्मांड पुराण के विवरणों का स्रोत वही है। पुराणों में वर्णित पहले चार राजवंशों की सूचियां जो हस्तिनापुर, कौशांबी, अयोध्या, मगध से संबंधित है उनमें ऐतिहासिक महत्व की सामग्री पर्याप्त है। वास्तविक ऐतिहासिक भाग मगध के शिशुनागों से आरंभ होता है। यहां मुख्य रूप से शिशुनाग वंश, नंद वंश, मौर्य वंश, शुंग वंश, कण्व वंश और आंध्र की सूचियां दी गई है ।उनके साथ-साथ अमीरों, शकों, यवनों, नागों, तुषारो, मुरुंडों,पुलिंद जैसी अनेक प्रजातियां तथा स्थानीय राजवंशों का भी उल्लेख है। गुप्त काल के शासकों का साम्राज्य प्रयाग, साकेत और मगध तक विस्तृत था, इसकी सूचना वायु पुराण देता है। वास्तव में पुराणों के वर्णन के आधार पर ही ईसवी पूर्व छठी शताब्दी से लेकर चौथी शताब्दी ईसवी का उत्तर भारत इतिहास बौद्ध और जैन परम्पराओं की जानकारी के साथ मिलकर निर्धारित किया जा सका। सूत परंपरा से मुक्त होने के बाद वंश विद्या अलग रूप में विकसित हुई जैसे बौद्ध ग्रंथ राजवंश, दीप वंश, महावंश, जैन ग्रंथ हरिवंश, हिंदू ग्रंथ रघुवंश, शशि वंश, क्षेमेंद्र की नृपावली जो अर्ध ऐतिहासिक मानी गई है। महावंश में विजय और उसके सीलोन आने की कथा का विवरण है। इस कथा का भौगोलिक क्षेत्र बहुत विस्तृत है जो पूरी भारत से शुरू होकर पश्चिम भारत तक जाता है और वहां से जहाज में बैठकर विजय सीलोन को रवाना हो जाता है।विजय को यहां सिंह का पौत्र बताया गया है जो सोलह जोड़े जुड़वां भाइयों में सबसे बड़ा है और वह जिस दिन सीलोन पहुंचा उसी दिन बुद्ध का परिनिर्वाण हुआ। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह आख्यान यह बताता है कि इस द्वीप का नाम सिंहल इसलिए पड़ा क्योंकि इसे बसाने वाला सिंह का वंशज था। इस कथा में वर्णित घटनाएं अन्य गणतांत्रिक राज्यों के उद्भव से भी मिलती जुलती है जिनका वर्णन अन्य बौद्ध ग्रंथों में मिलता है।जैसे महावस्तु में वर्णित शाक्यों का उद्भव। बौद्ध ग्रंथों में पुराणों से मिलते जुलते आख्यान मिलते हैं।

चक्रीय कालदृष्टि

पूर्व मध्यकाल में एक और प्रकार का ऐतिहासिक वृतांत मिलता है जिसे 'चरित' कहा गया। इसका विकास राज दरबारों में हुआ। अश्वघोष का बुद्धचरित इसका प्रथम उदाहरण है। सूत और चारण तरह के अधिकारी का स्थान अब वेतनभोगी दरबारी कवियों ने ले लिया जिन्होंने राजाओं की जीवनियां लिखी। ऐतिहासिक चरित एक प्रकार के रोमांस हैं जो कि एक सशक्त ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित होता है। जैसे कि हर्षचरित, विक्रमांक चरित,नव सहसांक चरित, कुमारपाल चरित, पृथ्वीराज विजय, सोमपाल विलास और रामचरित। इन रचनाओं में शासकों के साथ साथ समकालीन जीवन

का भी यथार्थ पर चित्रण जो कि उनके लेखकों के सतर्क प्रेक्षण और गहन मानवीय अनुभूति का परिणाम है। राजतरंगिणी प्राचीन भारत की कृति है जिसमें कश्मीर के राजाओं का एक अनवरत इतिहास है।इसके लेखक कल्हण कश्मीर नरेश हर्ष के मंत्री चंपक के पुत्र थे। राजतरंगिणी को विशुद्ध इतिहास की रचना मान लिया गया है। लेकिन यह भी कहा जाता है कि कश्मीर हिंद आर्य परंपरा का एक हिस्सा तो था ही परन्तु इस पर यूनानी रोमन, पूर्वी मंगोल और उत्तरी सीथियन या तर्क जैसी भिन्न भिन्न सांस्कृतिक धाराओं का भी प्रभाव पड़ा है। जिनमें से प्रत्येक की एक निश्चित ऐतिहासिक परंपरा थी। लेकिन कल्हण की यह रचना बहुत हद तक इतिहास और पुराण परंपरा का ऋणी है। कल्हण ने साक्ष्य के रूप में न केवल पूर्ववर्ती परंपरा का उपयोग किया है बल्कि स्थानीय,धार्मिक तथा लौकिक साहित्य, अभिलेखों का प्रयोग किया है। कल्हण की राजतरंगिणी की तीन भागों में देखा जा सकता है। पहले भाग में इतिहास पुराण परंपरा से काफी सामग्री ली गई है। दूसरे भाग में अलग अलग स्रोतों से, ऐतिहासिक दृष्टि से पुष्ट करने योग्य जानकारी ली गई है। अंतिम भाग में कश्मीर के इतिहास का वर्णन है। आर सी मजूमदार का मानना है कि राजतरंगिणी प्राचीन भारतवासियों द्वारा प्राप्त ऐतिहासिक ज्ञान की उच्चतम सीमा की दर्शाती है।

यह बात सम्पूर्ण विश्व मानता है कि भारत एक शांतिपूर्ण सहअस्तित्व वाला देश रहा है। ऐसे कोई प्रमाण नहीं मिलते कि जब भारतीयों को स्वहित के लिए किसी बाह्य शक्ति पर आक्रमण करना पड़ा हो। अर्थात् युद्ध व आक्रमण इतने बड़े स्तर के नहीं थे कि वे भारतीय समाज की गति को प्रभावित कर पाते। संभवतः इसीलिए प्राचीन भारत के लोगों ने इतिहास को केवल युद्ध एवं आक्रमणों की तिथि के रूप में नहीं देखा। वे समाज, परिवार और दैनिक जीवन के विवरणों से लेकर पारलौकिक जीवन की कल्पना कर उसे प्राप्त करने के प्रयासों पर केंद्रित रहे। अतः उनकी इतिहास की समझ के प्रति विचार करते समय यह देखना आवश्यक होगा कि वे भारत के प्रारंभिक समाज हैं और जिनका जीवन के प्रति अपना ही दृष्टिकोण था जो केवल आलोचना का विषय नहीं हो सकता। इतिहास बोध की इस धारणा में वैविध्य होने का एक कारण यह भी रहा है कि पश्चिमी सभ्यताओं में समय को रैखिक स्वरूप में देखा गया है और मानव जीवन के केवल भौतिक पक्ष पर जोर रहता है वहीं दूसरी ओर भारत में समय को चक्रीय स्वरूप में देखा गया है इसलिए जीवन के लौकिक और पारलौकिक पक्ष दोनों को महत्व देता है। इसीलिए पश्चिमी विद्वान में प्राचीन भारतीयों के इतिहास बोध को नकारने की प्रवृति रखते हैं।अतः में कहा जा सकता है कि यदि हम ईसाई यहूदी परंपरा से भारतीय इतिहास के अर्थ की तुलना करें तो पश्चिमी इतिहास दर्शन के साक्ष्य यहां सीमित दिखते हैं। लेकिन इससे हम भारतीय ऐतिहासिक परंपरा के अस्तित्व से इनकार नहीं कर सकते जो कि भारतीय सांस्कृतिक चेतना का एक अभिन्न अंग है।

निष्कर्ष

प्राचीन भारत में इतिहास लेखन की अवधारणा आधुनिक पश्चिमी इतिहासलेखन से भिन्न थी। यह केवल तथ्यों का संकलन नहीं, बल्कि जीवन के समग्र दर्शन का प्रतिबिंब था। वैदिक काल से लेकर मध्यकाल तक इतिहास लेखन की परंपरा निरंतर विकसित होती रही। कल्हण के राजतरंगिणी के साथ भारतीय इतिहासलेखन ने वैज्ञानिक पद्धति की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाया। भारतीय इतिहास लेखन की विशेषता यह रही कि इसमें धर्म, दर्शन, संस्कृति और राजनीति का समन्वित चित्रण मिलता है। यद्यपि इसमें कुछ सीमाएं थीं, फिर भी यह मानव सभ्यता की महत्वपूर्ण बौद्धिक उपलब्धि है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

[1] गुप्ता, पी. एल., "द नेचर ऑफ एंशिएंट इंडियन हिस्टोरियोग्राफी", जर्नल ऑफ द अमेरिकन ओरिएंटल सोसाइटी, खंड 85, 1965, पृ. 200-208

[2] सिन्हा, बी. पी., "द कंसेप्ट ऑफ टाइम इन एंशिएंट इंडियन हिस्टोरियोग्राफी", प्रोसीडिंग्स ऑफ द इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, खंड 28, 1966, पृ. 45-52

[3] शर्मा, आर. एस., "सोसियल चेंजेस इन अर्ली मीडिवल इंडिया", इंडियन हिस्टोरिकल रिव्यू, खंड 3, 1976, पृ. 15-28

[4] पाठक, सुनीति कुमार, "वैदिक साहित्य में इतिहास चेतना", भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान पत्रिका, खंड 12, 1975, पृ. 78-90

[5] त्रिपाठी, रामशंकर, "पुराणों में इतिहास दृष्टि", प्राचीन भारत, खंड 8, 1972, पृ. 35-45

[6] कल्हण, राजतरंगिणी, संपादक: एम. ए. स्टाइन, वेस्टमिंस्टर: आर्केबाल्ड कांस्टेबल एंड कंपनी, 1900

[7] बाणभट्त, हर्षचरित, संपादक: के. पी. पराब, बॉम्बे: निर्णयसागर प्रेस, 1897

[8] महाभारत, महर्षि व्यास, संपादक: विष्णु एस. सुकथांकर, पूना: भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, 1933-1966

[9] रामायण, महर्षि वाल्मीकि, संपादक: जी. एच. भट्ट, बड़ौदा: ओरिएंटल इंस्टीट्यूट, 1960-1975

[10] विष्णु पुराण, संपादक: एच. एच. विल्सन, लंदन: ट्रुबनर एंड कंपनी, 1864-1870

[11] मत्स्य पुराण, संपादक: आनंदाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना: आनंदाश्रम प्रेस, 1907

[12] वायु पुराण, संपादक: राजेंद्रलाल मित्र, कलकत्ता: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, 1880-1888

Cite this Article:

श्रीमती दीप्ति राणा, "प्राचीन भारत में इतिहास लेखन की अवधारणा", *Naveen International Journal of Multidisciplinary Sciences (NIJMS), ISSN: 3048-9423 (Online), Volume 1, Issue4, pp. 14-18, Febl-Mar 2025.*

Journal URL: https://nijms.com/

This work is licensed under a Creative Commons Attribution-NonCommercial 4.0 International License.